. नवमोऽध्याय: राजविद्याराजगुह्ययोग[सम्पाद्यताम्] ॐ

श्रीभगवानुवाच

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

दोषरहित तू भक्त है, गूढ़ समझ ले ज्ञान।

मुक्ति पार्थ मिल जाएगी, जो तू इसको जान ॥९– १॥

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।

प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥

विद्याओं का राजन है, पवित्र उत्तम ज्ञान।

अनुभव का यह धर्म है, सुखकारी यह ज्ञान ॥९–२॥

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

श्रद्धा नहीं जब धर्म में, भक्त नहीं, हे वीर।

मुझसे वो मिलते नहीं, बाँधे जग ज़ंजीर ॥९– ३॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

मेरे में ही व्याप्त है, सारा यह संसार।

जीव सकल मुझ में बसे, मेरा ना आकार ॥९– ४॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।

भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥

मैं जीवों में हूँ नहीं , देखो रुप विराट।

दिखता हूँ ना मै कहीं , पर सबका समाट ॥९– ५॥

यथाकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।

तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥

वायु सम आकाश में, बहती चारों ओर।

जीव सभी मुझ में रहे, मेरा ओर न छोर ॥९– ६॥

सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।

कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥

अर्जुन मुझमें आन मिले, अंत समय जब आय।

मै फिर से रचना करूँ, सृष्टि फिर बन जाय ॥९– ७॥

प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।

भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥

मै रचना का मूल हूँ, रचता बारम्बार ।

मै चाहूँ तो जग रचूं , चाहूँ तो संहार ॥९– ८॥

न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ।

उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥

कर्म न मुझको बाँध सके, सदा धनंजय जान।

दृढ–मन से मैं वास करूँ, आसक्ति ना ध्यान ॥९– ९॥

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥

चर अचर का मालिक मैं, अर्जुन तू पहचान।

चलता सृष्टि चक्र सदा, मै कारण तू जान ॥९– १०॥

अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

मूर्ख आम समझे मुझे, मानव तन को जान।

दिव्य रुप समझे नही, परमेश्वर पहचान ॥९– ११॥

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।

राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥

व्यर्थ कर्म आशा विफल, मोह बंधा अज्ञान।

रहे अासुरी भावना, मोहित वे सब मान ॥९– १२॥

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।

भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥

हे अर्जुन जो महापुरुष, देव गुणी जो लोग।

भक्ति भाव से जानते, सृष्टि मेरा यह योग ॥९– १३॥

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।

नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

कीर्तन वो करते रहे, मन के साथ यथार्थ।

भक्तिभाव से नतमस्तक , पूजा करते पार्थ ॥९– १४॥

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।

एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥

ज्ञानयोग में लगे रहे, पूजा करते लोग।

रूप अनेक या एक हो, भजते जग में लोग ॥९– १५॥

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधम् ।

मन्त्रोऽहमहमेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥

कर्मकांड में यज्ञ भी, मंत्र और घी साथ।

मैं अग्नि आहुति मैं, तर्पण का मै हाथ ॥९– १६॥

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।

वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ॥

मात पिता इस जगत के, मुझको सबकुछ मान।

वेदों में मै ही बसा, ओम मुझे तू जान ॥९– १७॥

गतिर्भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत् ।

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम् ॥

परमधाम स्वामी सकल, शरणागत का वास।

प्रलय उदय का हेतु मै, अमर बीज आवास ॥९– १८॥

तपाम्यहमहं वर्षं निगृह्णाम्युत्सृजामि च ।

अमृतं चैव मृत्युश्च सदसच्चाहमर्जुन ॥

बारिश हो या ताप हो, मम अधीन तू जान।

लेन देन जीवन सकल, सत्-असत्य का स्थान ॥९– १९॥

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपापा, यज्ञैरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते ।

ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्रलोक–मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देवभोगान् ॥

त्रिवेदी पिये सोमरस, माँग स्वर्ग का धाम।

इन्द्र लोक उनको मिले, देव मिले हर शाम ॥९– २०॥

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।

एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना, गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

इंद्र लोक को भोग कर, मृत्यु लोक की चाल।

नहीं त्रिवेदी छूटते, जन्ममरण जंजाल ॥९– २१॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

मुझको भाव अनन्य भजे, रखते मेरा ध्यान।

रक्षा कर उस भक्त की ,रखूं सदा ही मान ॥९– २२॥

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

पूजे दूजे देव को, श्रद्धा रखते ध्यान।

दोषपूर्ण मुझको भजे, अर्जुन ऐसा जान ॥९– २३॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।

न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥

मै भगवन मै ही भगत, सर्व यज्ञ में वास।

इसे नही जो जानते, होता नीच प्रवास ॥९– २४॥

यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।

भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

मिले देव में देव भक्त ,पितर भजे वो पाय

भूत जपते भूत मिले, मुझमे भक्त समाय ॥९– २५॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।

तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

फूल पत्ती फल और जल, करे भक्ति से भेंट

भक्तिभाव स्वीकार करूँ, सरल आत्मा भेंट ॥९– २६॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥९– २७॥

भोजन हो या कर्म हो, अर्पन हो या दान।

अर्जुन जो भी तप करो, मेरा ही हो ध्यान ॥९– २७॥

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।

संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥

नष्ट हो फल अच्छा बुरा, कर्म मुक्त हो जाय।

योग युक्त हो आत्मा, मुझ में आन समाय ॥९– २८॥

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।

ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥

सदा रखूँ समभाव मैं, द्वेष न रखता राग।

मुझमें बसता भक्त जो, मै ही उसका भाग ॥९– २९॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥

काम जो शुभ–अशुभ करे, मन में मेरा भाव।

साधु ऐसे है पुरुष, पूर्ण समर्पित भाव ॥९– ३०॥

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।

कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥

धर्मपरायण शीघ्र बने, क्षुधा शांत हो जाय।

हे अर्जुन सब जान ले, भक्ति भाव ना जाय ॥९– ३१॥

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।

स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

जो अर्जुन मेरी शरण, भले हो योनि पाप।

शूद्र वैश्य नारी रहे, मिलता परम् प्रताप ॥९– ३२॥

किं पुनर्ब्राह्मणाः पुण्या भक्ता राजर्षयस्तथा ।

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम् ॥९– ३३॥

हो ब्राह्मण धर्मात्मा, भक्त रहे मुनिराज

नाशवान इस लोक मे, भजलो मुझको आज ॥९– ३३॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।

मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

मन में मुझको रख सदा, मेरा हो नवकार।

पूर्ण लीन मन में रखे, मिले मुझे आकार ॥९– ३४॥

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे

श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराजगुह्ययोगो नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥